International Journal of Recent Research and Review, Vol. XVI, Issue 3, September 2023
ISSN 2277 – 8322

भारतीय संस्कृति के निर्माण में मंदिरों का योगदान

शोधार्थी – घनश्याम शर्मा
शोध निर्देशक – डॉ. वेद प्रकाश शर्मा
(प्रोफेसर शिक्षा विभाग)
महाराज विनायक ग्लोबल यूनिवर्सिटी जयपुर

भारतीय संस्कृति व सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति व सभ्यता है। इसे विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी माना जाता है। जीने की कला हो, विज्ञान हो या राजनीति का क्षेत्र भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ–साथ नष्ट होती रही हैं किंतु भारत की संस्कृति व सभ्यता आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर–अमर बनी हुई है।

संस्कृति शब्द का अर्थःसंस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों, आदि का निर्धारण करता है। अतः संस्कृति का साधारण अर्थ होता है–संस्कार, सुधार, परिष्कार, शुद्धि, सजावट आदि।आज के समय में सभ्यता और संस्कृति को एक–दूसरे का पर्याय समझा जाने लगा है जिसके फलस्वरूप संस्कृति के संदर्भ में अनेक भ्रांतियाँ पैदा हो गई हैं। लेकिन वास्तव में संस्कृति और सभ्यता अलग–अलग होती है।सभ्यता का संबंध हमारे बाहरी जीवन के ढंग से होता है यथा– खान–पान, रहन–सहन, बोलचाल आदि जबकि संस्कृति का संबंध हमारी सोच, चिंतन और विचारधारा से होता है।संस्कृति का क्षेत्र सभ्यता से कहीं अधिक व्यापक और गहन होता है। सभ्यता का अनुकरण किया जा सकता है लेकिन संस्कृति का अनुकरण नहीं किया जा सकता है ।

उपर्युक्त अंतर से स्पष्ट है कि दोनों के क्रियाकलाप अलग–अलग हैं और दोनों परस्पर जुड़े हुए भी हैं। सभ्यता में मनुष्य के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय व दृश्य कला रूपों का प्रदर्शन होता है जो जीवन को सुखमय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।जबकि संस्कृति में कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य और मानव जीवन की उच्चत्तर उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं। अतः यही कहा जा सकता है कि सभ्यता वह है जो हम बनाते हैं तथा संस्कृति वह है जो हम हैं।

भारतीय संस्कृति का प्राचीन स्वरूपः

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति यूनान, रोम, मिस्र, सुमेर और चीन की संस्कृतियों के समान ही प्राचीन है। कई भारतीय विद्वान तो भारतीय संस्कृति को विश्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति मानते हैं। संस्कृति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

वसुधैव कुटुंबकमः

- भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक व्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम वैदिक युग में प्राप्त होता है। वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवंत रही हैं, जिसमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय पाया जाता है।

- भारतीय विचारक आदिकाल से ही संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में मानते रहे हैं इसका कारण उनका उदार दृष्टिकोण है।
- हमारे विचारकों की 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम' के सिद्धांत में गहरी आस्था रही है। वस्तुतः शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति की कसौटी है। इस कसौटी पर भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से उतरती है।
- प्राचीन भारत में शारीरिक विकास के लिये व्यायाम, यम, नियम, प्राणायाम, आसन ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा शरीर को पुष्ट किया जाता था । लोग दीर्घ जीवी होते थे।

आश्रम व्यवस्थाः

- आश्रम व्यवस्था का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है।
- प्राचीन भारत के धर्म, दर्शन, शास्त्र, विद्या, कला, साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र इत्यादि में भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरुप को देखा जा सकता है।

मानव संस्कृतिः

- यह संस्कृति ऐसे सिद्धांतों पर आश्रित है जो प्राचीन होते हुए भी नये हैं। ये सिद्धांत किसी देश या जाति के लिये नहीं अपितु समस्त मानव जाति के कल्याण के लिये हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति को सच्चे अर्थ में मानव संस्कृति कहा जा सकता है।
- मानवता के सिद्धांतों पर स्थित होने के कारण ही तमाम आघातों के बावजूद भी यह संस्कृति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकी है।
    - यूनानी, पार्शियन, शक आदि विदेशी जातियों के हमले, मुगलों और अंग्रेजी साम्राज्यों के आघातों के बीच भी यह संस्कृति नष्ट नहीं हुई। अपितु प्राणशीलता के अपने स्वभावगत गुण के कारण और अधिक पुष्ट एवं समृद्ध हुई।

भारतीय संस्कृति का वर्तमान स्वरूप और महत्त्वः

- भारतीय संस्कृति का नूतन आयाम ब्रिटिश साम्राज्य की नींव के साथ प्रारंभ हुआ। इस काल में सभ्यता ने संस्कृति को दबाने की चेष्टा की अतः संस्कृति का यथार्थ स्वरूप उभर नहीं सका।
- इस युग में सामाजिक आचार–विचार पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ा। संयुक्त कुटुंब प्रथा के स्थान पर परिवारों का पृथक्करण होने लगा।
- धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत ने धर्म को पीछे धकेल दिया। विज्ञान ने ज्ञान के अपेक्षित स्वरूप की अपेक्षा कर दी भौतिकवाद उभरकर सामने आया और भारतीयों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण अपने मूल लक्ष्य से भटक गया।
- आधुनिकतावाद की अवधारणा का समाज में आना आसान हो गया। वैश्वीकरण और आधुनिकरण के मध्य में गहरा संबंध है। जब भारतीय संस्कृति का स्वरूप आधुनिक हो गया तब निश्चित दिशा में होने वाले परिवर्तन भी दिखाई देने लगे।
- बुद्धिवाद, विवेकीकरण और उपयोगितावाद आदि दर्शन का उदय संस्कृति का नया स्वरूप बन गया जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढालने का गुण होता है।
- आधुनिकता की जड़ें यूरोपीय पुनर्जागरण से जुड़ी हैं। यूरोपीय पुनर्जागरण में

नए–नए अन्वेषण और अविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया संस्करण सामने आया।

- कला और विज्ञान के नवीन साधना का श्रीगणेश हुआ, राजनीतिक तथा समाज व्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। अतः इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप एवं एशिया (भारत) में एक नवीन चेतना का संचार हुआ।
- प्रौद्योगिकी विकास, विवेकीकरण एक तर्मणा आदि द्वारा सभी क्षेत्रों में बुनियादी परिवर्तन हुए जिसके परिणामस्वरूप समाज की एक विशिष्ट स्थिति को प्रदर्शित करने वाली अवधारणा बनी।
- महिला को उचित स्थान मिला। अर्थात् बदली हुई संस्कृति में महिलाओं के प्रति सोच बदली अब उसे सशक्तिकरण की ओर ले जाने के प्रयास किये जाने लगे। कई आंदोलन व चर्चाओं का सहारा लिया गया। इस प्रकार सांस्कृतिक, मानववादी व व्यक्तिवादी स्वरूप देखने को मिला।
- मानव के विकासशील एवं सृजनात्मक स्वभाव पर बल देते हुए धर्म एवं तर्क, विज्ञान एवं धर्म का ही नहीं, वरन एवं प्राच्य एवं पाश्चात्य विचारधाराओं के समन्वय का प्रयास किया गया।
- संस्कृति के नए स्वरूप में गाँवों की संस्कृति को छोड़कर शहरीकरण देखा गया। इस पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। शहरीकरण से पलायन भी देखा गया। इस प्रकार लोग पुरानी संस्कृति को छोड़कर आधुनिक संस्कृति को अपनाने लगे।

संस्कृति के इस स्वरूप को भारतीय मंदिर स्थापत्य को आज भी जीवित रखा जा सकता है। पिछली कुछ शताब्दियों में मंदिर केवल उपासना और पूजा–अर्चना स्थल रह गए हैं संस्कृति के निर्माण में मंदिरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। बीती कुछ सदियों के दौरान इनकी यह भूमिका कम होती गई लिहाजा इनके विविध आयामों को फिर से जीवित करना होगा।

वर्तमान केंद्र सरकार काशी विश्वनाथ समेत देश के अनेक मंदिरों के जीर्णोद्धार में जुटी है। साथ ही अनेक अन्य कारणों से मंदिर आज विमर्श के केंद्र में हैं। दस असल भारतीय समाज में सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण में मंदिरों की भूमिका शरीर में सांस की तरह रही है। मंदिरों में ही भारतीय संगीतकला, नृत्यकला, आयुर्वेद, युद्धकला, वास्तु, शिल्प व मूर्तिकला पोषित हुई है लेकन पिछली कुछ शताब्दियों में मंदिर केवल उपासना और पूजा–अर्चना स्थल रह गए हैं और अपनी सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करने की भूमिका को निभाने में अत्यंत सीमित हो गए हैं। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि इनके पीछे के कारणों को समझा जाए।

भारतीय मूर्तिकला में पेड़–पौधों से लेकर कई देवी–देवताओं को निर्मत किया गया है जो विभिन्न मंदिरों में स्थापित भी हैं। मध्य प्रदेश में खजुराहो और ओडिशा का सूर्य मंदिर आदि इसी उत्कृष्टता के प्रमाण हैं। शास्त्रीय संगीत कला भी मंदिरों में ही विकसित हुई। भगवान शिव (नटराज स्वरूप) एवं देवी सरस्वती को संगीत की प्रेरणा माना गया है और हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक पहलुओं के कारण संगीत को एक उच्च कला माना गया है। इसके पीछे यह तर्क रहा कि इतनी बड़ी कला को किसी देवीय प्रेरणा के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता।

प्राचीन काल में ऋषि मंदिरों में गुरुकुल आश्रम चलाते थे जहाँ बच्चों को संस्थागत तौर पर शिक्षा और विद्या दान दी जाती थी। इन्हीं स्थलों में स्थित व्यायाम शालाओं में युद्ध कलओं और धनुर्विद्या की दीक्षा भी प्रारंभ हुई। दक्षिण भारत की कलारी पयाट्टू इसका एक उदाहरण है जिसके प्रणोता स्वयं

भगवान परशुराम माने जाते हैं। उत्तर भारत में मल्लयुद्ध चार प्रकारों में विभाजित है जिनमें से प्रत्येक प्रकार हिंदू देवता या पौराणिक योद्धाओं के नाम पर है। इसमें हनुमंती तकनीक श्रेष्ठता पर केंन्द्रित है, जांबुवंती प्रतिद्वंद्वी को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर करने हेतु उसे जकड़ने के संदर्भ में प्रयुक्त है, जरासंघी अंगों तथा जोड़ों को तोड़ने पर आधारित है, जबकि भीमसेनी विशुद्ध रूप से ताकत पर केंद्रित है।

धन्वंतरि और चरक जैसे आयुर्वेदाचार्यों द्वारा प्रेरित चिकित्सा विद्या का प्रसार हम मंदिरों में बने चिकित्सालयों में भी देख सकते हैं। प्राचीन काल में मंदिरों में चिकित्सालय भी संचालित किए जाते थे, जहाँ बीमारों का इलाज किया जाता था। मंदिर स्थापत्य व वास्तुकला में नागर और द्रविड़ शैली का विकास हुआ है। मंदिरों को जंगलों के बीच भी निर्मित किया गया है, पर्वतों को काटकर चट्टानों पर भी निर्मित किया गया है। महाबलीपुरम् में चट्टानों को काटकर मंदिर बनाया गया है। वहीं तंजौर का राजराजेश्वर मंदिर दक्षिण भारतीय वास्तु शैली का अप्रतिम उदाहरण है। इसके अतिरिक्त मंदिर सामुदायिक रसोई, विवाह स्थल व पर्व–त्योहारों के लिए सामाजिक व आर्थिक मिलन के केंद्र प्रारंभ से ही रहे हैं।

विदेशी हमलों, मंदिरों के ध्वंस और ब्रिटिश शासन के उदय के पश्चात् विभिन्न तरह के लाइसेंस व कानूनी प्रावधानों के आने से मंदिरों की सामाजिक व सांस्कृतिक भूमिका सीमित हो गई है। भारतीय उपमहाद्वीप में विदेशी सत्ता के शासन में संगीत व नृत्य में मनोरंजन ढूंढा गया। परिणामस्वरूप संगीत व नृत्य की आध्यात्मिकता सीमित हो गई। मुगल काल में मध्य–पूर्व से आए ईरानी सूफी संगीत को प्रश्रय मिला। इसमें मंदिरों के स्थापत्य और वास्तुकला तथा मूर्तिकला को भी क्षति पहुँची।

ब्रिटिश शासन काल में संगीत और नृत्य में भौतिकता व व्यावसायिकता बढ़ गई, जबकि इसके आध्यात्मिक पक्ष को कमतर कर दिया गया। मंदिरों में नृत्य व संगीत का संसथागत विकास रुका। मंदिरों में चलने वाली गुरुकुल व्यवस्था भी बंद हो गई। शिक्षण संस्थानों को चलाने के लिए धन न मिलने से बड़ी संख्या में गुरुकुल बंद हुए और उनकी जगह पश्चिमी स्कूली पद्धति ने ले ली। पारंपरिक आयुर्वेद पर चलने वाले चिकित्सालय भी पश्चिमी चिकित्सा के कारण सीमित हो गए एवं नये कानून व नियम बनाकर बहुत सारी बीमारियों के इलाज में पारंपरिक पद्धति में रोक लगा दी गई। मूर्तिकला तो इस तरह सीमित हुई कि जो मूर्तिकार पहले राज संरक्षण में पोषित किए जाते थे, वे सड़क किनारे मूर्तियाँ बनाकर जीवनयापन करने लगे। मंदिरों के स्थापत्य में अब पहाड़ या चट्टान काटकर शायद ही मंदिर बनते हों। नागर और द्रविड़ शैली भी जगह भी नई उपजी नगरीय शैली ने ले ली, जो उपलब्ध स्थान के आधार पर मंदिर निर्माण पर केंद्रित है।

इस तरह हम देखते हैं कि मंदिरों की सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करने की भूमिका सीमित हो गई, परिणामस्वरूप मंदिर केवल उपासना स्थल रह गए। वर्तमान परिवेश में बहुत सीमित स्तर पर बड़े मंदिरों में सामूहिक रसोईघर व चिकित्सालय अवश्य चलते हुए देखे जा सकते हैं। पर्व व त्यौहार के समय सामाजिक मिलन व आर्थिक केंद्र के रूप में मंदिर आज भी अपनी युक्तियुक्तता बनाए हुए हैं। लेकन संगीत, नृत्य, शिक्षण, स्थापत्य, वास्तु, शारीरिक रक्षा, चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में मंदिरों की भूमिका नगण्य हो गई है। अब नई पीढ़ी के नेतृत्व द्वारा प्रयास होना चाहिए कि मंदिरों के इन सांस्कृतिक पक्षों को पुनर्जीवित करने की रणनीति पर कार्यकर भारतीय संस्कृति और सभ्यता के नए आयामों को विकसित किया जाए।

मंदिर विचलित मन से दूर वह पवित्र स्थान है जहाँ मानव मन को नवीन चेहरा और प्रेरणा प्राप्त होती है। मंदिर दूर से देखने पर एक स्थापत्यिक ढाँचे की भाँति प्रतीत होता है। परंतु यदि हम ध्यानपूर्वक मंदिर का अध्ययन करें तो पाते हैं कि मंदिर विभिन्न प्रतीकों का समन्वय है। मंदिर के प्रत्येक भाग के निर्माण के पीछे कोई न कोई गूढ़ मंतव्य है। मंदिर के विभिन्न भाग मानव जीवन की संपूर्ण कहानी को व्यक्त करते हैं। उसमें यदि चार आश्रम समाहित हैं तो अमरता और पुनर्जन्म की कहानी भी सम्मिलित है। मंदिर की अपनी धार्मिकता है परंतु उसमें विभिन्न रहस्यात्मक अनुभूतियों का भी समन्वय है। मंदिर की तुलना मानव शरीर से की गयी है तथा उसके विभिन्न अंगों को मंदिर के विभिन्न अंगों के साथ समीकृत किया गया है। मंदिर में संपूर्ण ब्रह्माण्ड समाहित है। यह स्वयं में संपूर्ण सृष्टि है। प्राचीन भारतीय वैदिक परंपरा संपूर्ण सृष्टि को पुरुष के रूपक से परिभाषित करती है। वास्तुग्रंथों में इसे वास्तु पुरुष की संज्ञा दी गयी है और मंदिर को पुरुष का प्रतिरूप कहा गया है। क्योंकि मंदिर स्वयं में संपूर्ण ब्रह्माण्ड हैं और वह मानव शरीर से समीकृत है इसलिए मानव शरीर चलता–फिरता ब्रह्माण्ड है।

अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में मंदिरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये मंदिर धार्मिक आस्था के प्रतीक होने के साथ–साथ हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के भी प्रमुख केंद्र रहे हैं। भारतीय वास्तुशिल्प का चरमोत्कर्ष देवालयों के निर्माण में ही प्रतिबिम्बित होता है। वैदिक साहित्य में भक्ति या उपासना का जो मूल बीज निहित था उसका परवर्ती भारतीय साहित्य और कला में मिलता है। आगमों एवं पुराणों की उपासना पद्धति ने विष्णु, सूर्य, शिव आदि देवताओं की पूजा–अर्चना पर बल दिया, जिससे मूर्तियों और मंदिरों का व्यापक रूप से निर्माण होने लगा और मंदिर धार्मिक वासतु क प्रतीक बन गए। देवालयों के लिए मंदिर शब्द प्रायः गुप्तकाल के अनन्तर प्रचलित हुआ। अर्थशास्त्र, महाभारत और रामायण आदि ग्रंथों में देवालय के लिए देवकुल, देवगृह तथा देवायतन जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। स्वतंत्र अर्थों में देवालय के लिए मंदिर शब्द का प्रयोग संभवतः औपनिवेशिक काल में हुआ।

प्राचीनकाल में यज्ञवेदी का निर्माण देवों के आह्वान तथा यज्ञादि के निष्पादन हेतु किया जाता था। यज्ञवेदियों एवं चित्तियों में ही देवालय निर्माण के बीज निहित हैं। इस संबंध में स्टैला क्रैमरिश का मत है क मंदिर की रचना में नीचे से लेकर शिखर तक वैदिक चिति विद्यमान है। हमारे समाज में हिंदू धर्म के अन्तर्गत देवी–देवताओं की उपासना हेतु लता–पत्रादि से मण्डप बनाकर आज भी पूजा–अर्चना की जाती है। प्रायः जैसा कि हम जानते हैं हिंदू मंदिर एक प्रतीक है। इस संपूर्ण जगत में मनुष्य सबसे विकसित प्राणी है और मंदिर उसी का प्रतिरूप है इसीलिए मंदिर को पुरुष कहा गया है। शिल्परत्न में कहा गया है कि देवायतन को पुरुष (जगतस्रष्टा) की देह मानकर पूजा की जानी चाहिए। देवसदन के विभिन्न वास्तुगत अंग उस विशट पुरुष के ही अवयव हैं। इसीलिए मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंगों के नाम पाद से लेकर शिखा तक के अनुरूप ही मंदिर के अंगों का भी नामकरण किया जाता है। चरण, पाद, जंघा, ग्रीवा और मस्तक इत्यादि शब्द जो कि मानव शरीर के अंग हैं व जैविक कार्य करते हैं, मंदिर के स्थापत्य के विभिन्न अंगों को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। मंदिर के आधार अथवा चबूतरे को पाद कहा गया जो समस्त मंदिर का भार संभालता है। उसके ऊपर का भाग पैर और जंघे का सूचक है। जहाँ से मंदिर का आंतरिक भाग दिखाई देता है उसको उपमा कटि से तथा आंतरिक भाग की उपमा उदर से की गयी। छत के ऊपर वक्ष तथा स्कंध होता है। शीर्ष

तथा शिखर की उपमा मानव के सिर से की गयी। परंतु सुंदर से सुंदर शरीर भी आत्मा के बिना निर्जीव है। अतः हिंदू धर्म में मंदिर उस देवता का स्थान है जो विश्व की अंतरात्मा है। इसलिए मंदिर को देवालय, शिवालय व देवायतन जैसे शब्दों से अभिहित किया गया है।

साहित्य एवं अभिलेखों में मंदिर शब्द का प्रयोग सामान्य भवन के रूप में मिलता है। 13वीं शती ई. तक के साहित्य एवं अभिलेखों में यही परंपरा दिखायी पड़ती है परंतु स्वतंत्र अर्थों में देवालय के लिए मंदिर शब्द का प्रयोग संभवतः औपनिवेशिक काल में हुआ।"

संपूर्ण रूप में मंदिरों के निर्माण को वैदिक काल से चल रही निरन्तर विकास की प्रक्रिया का परिणाम कहा जा सकता है जिसने विभिन्न कालों में विभिन्न आयामों को प्राप्त किया। मंदिर के संरचनात्मक अवशेषों की बात करें तो तृतीय शती ईसा पू. से ही हमें सर्वप्रथम मंदिरों के अवशेष प्राप्त होने लगते हैं। तत्पश्चात् शुंगकाल में भी हमें इसी प्रकार के अवशेष प्राप्त होते हैं तथा आगे चलकर कुषाण काल में मंदिर का कोई स्पष्ट अवशेष तो प्राप्त नहीं होता है परंतु अनेकों ऐसे प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन जनजीवन में पूज्य–परंपरा विद्यमान थी। इसके बाद हमें गुप्तकाल में सर्वप्रथम अपने पूर्ण रूप में निर्मित मंदिरों के अवशेष प्राप्त होते हैं जो तीन विभिन्न चरणों से होते हुए अपने उत्तरार्द्ध में पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं।

शिखर के सभी चरण एक–दूसरे में समाहित होकर मुख्य रेखा शिखर में परिवर्तित हो गए। चन्द्रशाला के आकार को छोटे आकार से युक्त जाला ने ले लिया। शिखर में प्रारंभ से लेकर शीर्ष तक प्रत्येक मंजिल के कोनों का एकीकरण हो गया जिससे वेनुकोश का प्रारंभ हुआ जो नागर शिखर की अनिवार्य विशेषता है।

गुप्तकाल में नागर शैली का विकास हुआ जिसमें गुप्तकालीन शिखर युक्त मंदिरों का प्रादुर्भाव हुआ जिसका प्राचीनतम उदाहरण देवगढ़ (झाँसी जिला, उत्तर प्रदेश) तथा भीतरगाँव (कानपुर, उत्तर प्रदेश) के मंदिर हैं। परवर्ती गुप्तकाल में सीढ़ीनुमा जगती से के मंदिर भी उपलब्ध होते हैं जिन्हें विष्णुधर्मोत्तर पुराण में एडूक प्रकार के मंदिर कहा गया है।

शिखर के सभी चरण एक–दूसरे में समाहित होकर मुख्य रेखा शिखर में परिवर्तित हो गए। चन्द्रशाला के आकर को छोटे आकार से युक्त जाला ने ले लिया। शिखर में प्रारंभ से लेकर शीर्ष तक प्रत्येक मंजिल के कोनों का एकीकरण हो गया जिससे वेनुकोश का प्रारंभ हुआ जो नागर शिखर की अनिवार्य विशेषता है।

उक्त विशेषताओं से युक्त शिखर को एकाण्ड नागर शिखर की संज्ञा दी गयी है। पूर्वमध्यकाल में इन एकाण्डक नागर शिखरों में मुख्य शिखर के चारों ओर अनेकों उ..... गों को पूँजीभूत करने की प्रक्रिया ने एकाण्डक को अनेकाण्डक शिखरों में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार इस समय में नागर शिखरों ने अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लिया। पूर्वमध्यकाल में नागर शिखरों का विकास तो हुआ साथ ही साथ उनके निर्माण में विभिन्न शैलियों का भी प्रयोग किया गया। इस काल के ग्रंथों में ंदिर–निर्माण की कई शैलियों की चर्चा की गई है परंतु उनमें से केवल नागर, द्रविड़ और वेसर आदि तीन ही लोकप्रिय हुई। नागर का क्षेत्र जहाँ हिमालय से विंध्य पर्वत तक विस्तृत था वहीं द्रविड़ का कृष्णा से कन्याकुमारी तथा वेसर का विंध्य से कृष्णा तक। परंतु यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो नागर शैली के कुछ मंदिर कर्नाटक क्षेत्र से प्रारंभिक पश्चिमी चालुक्यों की राजधानी से प्राप्त हुए हैं। ठीक इसी प्रकार द्रविड़ शैली के समरूप कुछ मंदिर उत्तर भारत स्थित ग्वालियर व उड़ीसा

से प्राप्त हुए हैं। इस क्षेत्र–संक्रमण संबंधी मत के विषय में कोई आश्चर्य की अभिव्यक्ति संभवतः नहीं की जा सकती है क्योंकि ईशानशिवगुरूदेव पद्धति तथा कामिकामम् में स्पष्टतः उल्लेख है कि कलाकार अपनी आत्मा को शरीर प्रदान करने के लिए किसी भी क्षेत्र का अतिक्रमण कर सकता है।

नागर शिखर से तात्पर्य शीर्ष से है जो कि मंदिर का सबसे ऊपरी भाग होता है। यह अनेक प्रतीकों का समन्वय है। अनेक विद्वानों ने इसके निर्माण के पीछे अनेकों तर्क दिए हैं। प्राचीन हिंदू मान्यता के अनुसार देवता गिरिश्वृंगों पर निवास करते थे तथा शिखर की बाह्य संरचना इसी तथ्य की परिचायक है जबकि शिखर की आंतरिक बनावट मनुष्य के जीवन के विभिन्न चरणों को प्रदर्शित करती है जिसको जीते हुए एक दिन व शून्य में मिल जाता है। शिखर पर अंकित चैत्य–गवाक्ष सूर्य–चक्र की भाँति प्रतीत होते हैं क्योंकि जीवन के विभिन्न चरणों को जीते हुए मनुष्य के मन में जब अंधकार बैठ जाता है तब सूर्य की किरणें चक्र की भाँति उस नकारात्मकता को काट देती हैं तथा प्रभु की अवधारणा निहित है। प्रासाद शब्द से मंदिर व महल दोनों का ही बोध होता है। जिस प्रकार महल में राजा के सिंहासन, छत्र एवं चँवर की व्यवस्था होती है ठीक उसी प्रकार मंदिर में भी देव प्रतिमा का सिंहासन, छत्र एवं चँवर आदि से सम्मान किया जाता है व प्रतिमा की आराधना करते हुए वाद्य, दीपक व नृत्य का प्रदर्शन होता है। जिस प्रकार से एक राजमहल में दरबार कक्ष व अन्य कक्ष होते हैं ठीक उसी प्रकार से मंदिर में भी गर्भगृह के अतिरिक्त मंत्रणाकक्ष व सभामण्डप होता है। मंदिर का गर्भगृह ठोस दीवारों से घिरा हुआ एक अंधेरा कक्ष होता है, जिसका आंतरिक भाग मंद रोशनी वाले एक दीपक से प्रकाशित होता है। संपूर्ण वातावरण बाह्य संसाररूपी माया की तरह दिखाई देता है और इस अंधकार में आ रही मंद रोशनी ईश्वर की रहस्यात्मक अनुभूति कराती है जो कि नश्वर है और संपूर्ण जगत में व्याप्त है।

यदि संपूर्ण मंदिर की बात करें तो हम यह देखते हैं क मंदिर की बाहरी दीवारों पर संपूर्ण देवताओं, मानव व पशुओं का बारीकी से अंकन किया जाता है। इसके पीछे भावना यही थी कि ये सभी इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। व्यक्ति जिस प्रकार से मंदिर के चारों ओर परिक्रमा करता है उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो वह स्वयं ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहा हो। इसके अतिरिक्त ठोस दीवार और मंदिर का गहन अंधकार गर्भगृह को गुफा रूप में प्रदर्शित करता है, जहाँ विराजमान होकर ईश्वर अपनी तपस्या में लीन रहते हैं साथ ही मंदिर का शीर्ष भाग जो शिखर कहलाता है, अपनी बनावट में पर्वत के समान दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त मंदिर के आंतरिक कक्ष की दीवार, स्तंभ व छत पर पवित्र नक्काशी–कार्य भी आशाधक के मस्तिष्क को प्रभावित करता है और इस भक्ति भावना में रत होकर आराधक मंदिर के दरवाजे पर पहुँचता है जो अंतिम अलंकृत स्थान होता है। द्वार की रचनाओं पर अंकित नदी–देवियों को देखकर ऐसा लगता है कि मानों वे मनुष्य के पृथ्वी–दोषों को परिमार्जित करने के लिए तत्पर हों, ताकि मनुष्य अपने कभी कर्मों से निवृत्त होकर, माया–मोह छोड़कर ईश्वर की दूवमूर्ति पर अपना मन और आत्मा केन्द्रित कर ले। कहने का तात्पर्य यह है कि गर्भगृह, भ्रूण के समान है और मनुष्य का यहाँ से अपने अनुभूति के माध्यम से पुनर्जन्म होता है। अर्थात् गर्भगृह वह स्थान है जहाँ मनुष्य मायारूपी संसार का चक्कर लगाकर पहुँचता है और उसे परमेश्वर के दर्शन होते हैं जो सत्य और प्रकाशमान हैं। उनके दर्शन से मनुष्य के जीवन में फैला मायारूपी अंधकार छँट जाता है और मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त मंदिर के गर्भगृह के ऊपरी भाग की बनावट एवं संरचना भी देखने में अद्‌भुत लगती है। इस बनावट में

एक चौड़े आधार से संरचना प्रारंभ होती है तथा ऊपर की ओर जाकर सभी पंक्तियाँ क्रमशः घटती हुयी एक ही बिंदु पर केन्द्रित हो जाती हैं। यह मंदिर का सबसे ऊँचा स्थान है, जिसे शिखर या शीर्ष कहा जाता है। इस तरह की बनावट के पीछे भी दो उद्देश्यों की सिद्धि होती हैः प्रथम, बाहर से देखने पर यह संरचना पर्वत की भाँति प्रतीत होती है, जिसे देखकर ऐसी अनुभूति होती है जैसे क भगवान स्वयं पर्वतों में बैठकर तपस्या में लीन हों। द्वितीय इसकी आंतरिक बनावट इस तथ्य का बोध कराती है कि मनुष्य इस मायारूपी ब्रह्माण्ड में जितना चाहे विचरण कर ले परंतु उसकी अंतिम सिद्धि परमेश्वर में ही होती है।

प्राचीन भारतीय वैदिक परम्परा संपूर्ण सृष्टि को पुरुष के रूपक से परिभाषित करती है इसीलिए पुरुष को विभिन्न विषयों में स्वीकार किया गया है। वास्तुग्रंथों में इसे वास्तु पुरुष की संज्ञा दी गयी है तथा मंदिर के विविध भागों को वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों के साथ समीकृत किया गया है। वैदिक कालीन ग्रंथों में वास्तोष्प नामक देवता का उल्लेख मिलता है जो वास्तु के देवता थे।

वास्तु पुरुष की उत्पत्ति संबंधी आख्यान सर्वप्रथम वराहमिहिर की बृहत्संहिता तथा मत्स्यपुराण (अध्याय 252) में मिलता है। बृहत्संहिता के अनुसार एक बार एक ऐसा दैत्य हुआ जिसने संपूर्ण पृथ्वी को अंधकारमय बना दिया। तत्पश्चात् हिंदू मान्यता के अनुसार सभी 33 कोटि देवताओं ने उस दैत्य के एक–एक अंग को पकड़कर धरती पर औंधे मुँह लिटा दिया। Ait Ye लिटाने के पश्चात् दैत्य ने ईश्वर से प्रार्थना की कि अब मैं भोजन कैसे ग्रहण करूँगा तब ईश्वर ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम धरती पर ऐसे ही औंधे मुँह लेटे रहो तथा अब से धरती पर जब भी किसी भवन का निर्माण होगा तो जैसे–जैसे उसमें ईंट और पत्थर एक के ऊपर एक रखे जायेंगे ठीक उसी प्रकार भवन के रूप में तुम भी उठकर खड़े हो जाओगे तथा भवन निर्माणकर्ता के द्वारा जो यज्ञादि संपादित किए जायेंगे वही तुम्हारा आहार होंगे। वास्तु पुरुष की उत्पत्ति संबंधी कुछ इसी प्रकार का विवरण मत्स्यपुराण तथा आगे चलकर ईशान शिव गुरूदेव पद्धति, शिल्परत्न, काश्यपशिल्प, वास्तुविद्या, मानसार, समरांगण सूत्रधार, मयमत् तथा अपराजितपृच्छा आदि ग्रंथों में मिलता है।

इस प्रकार यह पुरुष पूरी सृष्टि और ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। भारतीय परंपरा में वास्तुपुरुषके रूप में प्रत्येक भवन व प्रत्येक मंदिर अपने आप में संपूर्ण प्रकृति तथा संपूर्ण ब्रह्माण्ड है और क्योंकि वह मानव शरीर से समीकृत है इसलिए मानव शरीर चलता–फिरता ब्रह्माण्ड है।

निष्कर्षः

अतः यह स्पष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि भारत में कभी भी एक ही संस्कृति पूर्ण रूप से व्याप्त नहीं रही और न ही शायद किसी भी बड़े प्रदेश में कभी एक ही संस्कृति रही है। इस देश में आध्यात्मिक संस्कृति की प्रमुखता रही है। अतः संस्कृति में बदलाव निरंतर रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. क्रैमरिश, स्टेला : द हिन्दू टेम्पुल्स, भाग–1, 1948 पृ. सं. 145, कलकत्ता।
2. शल्परत्नः अध्याय 16, यू.एस. 1141
3. चंदा, आर.पी. 1938, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर्स इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, पं. सं. 8, लंदन।
4. बनर्जी, जेएएन. 1956, द डवलपमेंट ऑफ हिंदू, आइकोनोग्रैफी (द्वितीय संस्करण), पृ. सं. 36 कलकत्ता।
5. मैक्समूलर, 1872, चिप्स फाम ए जर्मन वर्कशाप जिल्द–1, पृ. 38।
6. विष्णुपुराण, भूमिका, पृ. सं. 21

7. मैक्डोनेल, 1983, दी वैदिक माइथॉलजी, पृष्ठ संख्या 13, वाराणसी।
8. कीथ, ए.वी., 1925, रेलिजन एण्ड द फिलॉसफी ऑफ दि वेदाज, जिल्द 1, पृष्ठ संख्या 48, वाराणसी।
9. जर्नल ऑफ दि म्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, बाम्बे।
10. आर्कियोलॉजिकी सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, संख्या 70, पृ. सं. 1–2
11. कुमारस्वामी, आ. 1927, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ. सं. 981, लंदन।
12. क़रेमरिश, स्टेला, 1948, दी हिंदू टेम्पुल, भाग–1, पृ. सं. 283, कलकत्ता।
13. कृष्णदेव कृत खजुराहो।
14. घुर्ये, जी.एस., 1953 भारतीय साधु। लोकप्रिय प्रकाशन।
15. गुप्ता, डी.एन., 1972, विश्वकर्मा वास्तु शास्त्र : हिंदू वास्तुकला का एक विश्वकोष। भारतीय कला प्रकाशन।
16. क्रैमिश, एस., 1976, हिंदू मंदिर, मोतीलाल बनारसीदास।
17. वात्स्यायन, के, (सं.), कलाकार और संरक्षक : भारतीय कला इतिहास में योगदान, मनोहर पब्लिशर्स।